

23 बच्चों का स्वयं का स्थान

jpukRedrk ,o 0;fäxr le; & cPpk dh dk;Z'kkyk l: ukVl

उमाशंकर पेरिओडी

"हमें कोई सार्थक और स्थायी काम करना है"—हमारे समुदाय विकास के व्याख्याता की बात को दोहराते हुए मेरे मित्र ने घोषणा की। इसके परिणामस्वरूप हमने आस—पड़ोस के बच्चों के लिए एक रचनात्मक कार्यशाला आयोजित करने का निर्णय लिया। यह स्थान था अत्तावर जो मैंगलोर का अर्ध—झोपड़पट्टी वाला क्षेत्र है। हम छह लोग एम.एस.डब्ल्यू. कोर्स कर रहे थे और उसी इलाके में रहते थे। बच्चों की रुचि और अपनी सामर्थ्य व सीमाओं का ध्यान रखते हुए हमने दस दिवसीय कार्यशाला की योजना बनाई। इसमें हमने थियेटर, कला, चिकनी मिट्टी से चीजें बनाना, कठपुतली कला, गाना, कहानी सुनाना और बहुत सारे खेलों को शामिल किया। यह एक मजेदार कार्यशाला थी जिसमें बच्चों को बहुत आनन्द आया।

इस कार्यशाला में बच्चों ने एक एकांकी भी तैयार किया जिसका शीर्षक था—'कत्तले राज्या' (अन्धेरे का साम्राज्य)—और जिसे मैंगलोर के अधिकांश पार्कों में सामान्य लोगों (यानि ऐसे दर्शक जिन्हें कोई औपचारिक निमन्त्रण नहीं दिया गया था) के सामने प्रदर्शित किया गया। इसे व्यापक मीडिया कवरेज मिला और लोगों से बहुत प्रशंसा भी मिली।

जब पनम्बूर के ऑफिसर्स क्लब ने हमें अपने बन्दरगाह के अधिकारियों के बच्चों के लिए ऐसी ही कार्यशाला का आयोजन करने का आमंत्रण दिया तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। हम एकदम से तैयार हो गए। अपने अत्तावर के अनुभव के आधार पर हमने इस कार्यशाला का आयोजन बहुत उत्साहपूर्वक किया। पर शीघ्र ही हम जान गए कि पनम्बूर के बच्चे अत्तावर के बच्चों जैसे नहीं थे। पनम्बूर के बच्चों के साथ काम का कोई भी तरीका सफल नहीं हो पा रहा था। जब उनसे चित्र बनाने को कहा जाता तो वे कप और प्लेट, गुड़हल का फूल और भारत का झण्डा बना लाते जो उन्होंने अपने स्कूल की चित्रकला की कक्षा में सीखा था! अत्तावर के बच्चों ने विविध प्रकार के चित्र बनाकर हमें हैरान कर दिया था। वे रंगों के साथ खेलते थे और मेकअप के नाम पर अपने चेहरे पर रंग मलना उन्हें अच्छा लगता था। कभी—कभी तो वे इतने सारे रंग मिला देते थे कि वह काला रंग बन जाता।

यही नहीं उन्हें अपने चारों ओर जो कुछ भी नजर आता वे उसका चित्र बना देते। एक बालिका ने तो एक लम्बी रेखा और उसके पास एक छोटी सी बिन्दी बना दी थी। हमने समझने की कोशिश कि यह क्या चीज हो सकती है, बहुत प्रयत्न भी किया पर अन्त में हार मान ली। जब हमने उससे पूछा तो जवाब मिला कि लम्बी रेखा उसके पिता जी थे और वह छोटी सी बिन्दी 'मैं' थी! अब तक निरर्थक सा प्रतीत होने वाला चित्र अचानक ही कितना सार्थक बन गया था! हमने उस बच्ची के भीतर की भावनाओं की झलक पा ली थी।

एक बालक ने काले रंग से लीपा—पोती करके उसके ऊपर पीले रंग की रेखा खींच दी थी। हम एक बार फिर पशोपेश में पड़ गए। यह क्या हो सकता है? क्या कोई अमूर्त चीज है? हम तब तक अपना सिर खुजाते रहे जब तक उस बालक ने रहस्य को सुलझा नहीं दिया। "यह एक ऑटोरिक्शा है," उसने कहा और लो, अब हमें भी ऑटोरिक्शा नजर आने लगा! इतना ही नहीं, एक और कलात्मक पहेली हमारी प्रतीक्षा कर रही थी। एक बच्चे ने पूरे कागज पर रंगीन बिन्दु बना दिए थे और उसके अलावा वहाँ कुछ भी नहीं था। जब समझाने को कहा तो बच्चा बोला "यह भूत—आराधना है।" बच्चे ने दूर से इस त्यौहार की छोटी—छोटी बत्तियाँ मात्र देखी थीं और उसी को बड़ी सफलतापूर्वक दर्शाया था।

झोपड़—पट्टी के बच्चों के इस अनुभव की छाया में हमें लगा था कि अधिकारियों के बच्चे कुछ और दिलचस्प काम करेंगे। पर हमारी आशाओं पर पानी फिर गया। इस शहरी समूह से हमें कप—प्लेट, गुड़हल के फूलों और सममितीय डिजाइन ही मिल पाए।

नाटक की कार्यशाला भी बड़ी निराशाजनक रही। हमने उन्हें पड़ोसियों पर एक फिल्म दिखाई थी और आशा की थी कि उस पर बहस होगी। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ और हमारा वह प्रयास भी विफल रहा। जब हमने उनसे अपनी अभिनय प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिए कहा तो वे मंच पर आए और फिल्म शोले की पिटी—पिटाई लाइन—"कितनी गोलियाँ बाकी हैं रे साम्बा!" या किसी और फिल्म का कोई संवाद दोहराते। हम समझ नहीं पा रहे थे इस क्रियाकलाप को आगे कैसे ले जाएँ। अत्तावर के बच्चे अपने परिवेश में देखे हुए विविध दृश्यों को सामने लाते थे—दशहरे में होने वाला शेर का नृत्य, गर्मियों की भूत—आराधना, अन्तिम संस्कार (वे एक शमशान के पास रहते थे).......उनके पास विचारों की कमी नहीं थी और वे हमेशा कुछ मौलिक, कुछ नया लेकर तैयार रहते थे।

संक्षेप में कहें तो हम पनम्बूर में अपने सभी प्रयासों के बावजूद एक अच्छा नाटक प्रस्तुत नहीं कर पाए। जैसे—तैसे हमने कार्यशाला को समाप्त किया पर हम बहुत निराश थे। इस अनुभव ने हमें सोचने पर मजबूर किया। हमसे कहाँ चूक हुई थी? लेकिन घण्टों की बहस के बाद भी हमें कोई जवाब नहीं मिला। मैं इस असफलता को भूल नहीं पाया और इस बारे में मैंने विशेषज्ञों से बातचीत की। क्या इसका सम्बन्ध उनकी जीवन शैली से था? मैंने इन बच्चों के साथ बातचीत शुरू की और उनके दिन—प्रतिदिन के जीवन का ब्यौरा एकत्र किया। मैंने पाया कि अधिकारियों के बच्चों का जीवन बहुत अच्छी तरह से नियोजित था जिसमें उनके सर्वांगीण विकास के बहुत अवसर थे। लेकिन अत्तावर के बच्चों का जीवन अनियोजित था और उनके माता—पिता ने उनके विकास की कोई योजना नहीं बना रखी थी।

यहाँ दोनों समूहों के बच्चों की जीवन शैली का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रातः काल—पनम्बूर: अधिकारियों के बच्चों को सुबह उठाया जाता है और नहाने—धोने के बाद वे अपना गृहकार्य और अध्ययन करते हैं जिसकी निगरानी माता या पिता में से कोई एक करता है। नाश्ता करने के बाद माता या पिता उन्हें कार या स्कूटर से ठीक घण्टी बजने के समय स्कूल में छोड़ते हैं।

अत्तावर: उठते ही ये बच्चे पास के बूथ से दूध लाने के लिए भागते हैं। वहाँ वे दूध लेने के लिए आए हुए अपने स्कूल/कक्षा के साथियों से मिलते हैं। वे बातें करने लगते हैं और देर से घर पहुँचने पर माता—पिता से डाँट खाते हैं। फिर वे कुछ खाकर स्कूल के लिए रवाना होते हैं। वे घर से जल्दी निकलते हैं और रास्ते में हर पल का आनन्द उठाते हुए आराम से स्कूल पहुँचते हैं। चलते—चलते वे खेलते हैं, दिलचस्प चीजें इकट्ठा करते हैं, पेड़ पर चढ़ते हैं। उन्हें पता है कि विभिन्न मौसमों और लोगों के अहातों में कौन—कौन से फल मिलते हैं! उनके लिए स्कूल तक की यह यात्रा बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है और वे लगभग रोज ही देर से स्कूल पहुँचते हैं। बच्चे बताते हैं कि देर से आने पर उनकी खिंचाई तो होती है पर उन्हें इसकी आदत पड़ चुकी है।

मध्याह्न—पनम्बूर: अधिकारियों के बच्चों का खाना घर से आता है। नौकरानी या माँ खाना लाती हैं या पिता बच्चे को घर ले जाते हैं और खाने के बाद वापस स्कूल ले आते हैं।

अत्तावर: उनके लिए यह खेलने का समय है। बच्चों के लिए खाने का उतना महत्त्व नहीं है। जो कुछ वे खाने के लिए लाते हैं उसे जल्दी से गटककर खेलने के लिए भाग जाते हैं और जी भरकर खेलते हैं।

सायंकाल—पनम्बूर: बच्चों को घर ले जाने के लिए गाड़ियाँ तैयार रहती हैं। घर पर बच्चों से हाथ—मुँह धोकर पढ़ने के लिए कहा जाता है। कुछ नियमित रूप से गणित या विज्ञान की ट्यूशन क्लास में जाते हैं। घर लौटकर वे नहाते हैं और गृहकार्य करने लगते हैं।

अत्तावर: यह खेलने का समय है। माताएँ दुकान पर जाने, पानी, लकड़ी या मिट्टी का तेल लाने के लिए बच्चों की मदद लेती हैं। रात के खाने के पहले अधिकांश बच्चे पढ़ाई और अपना गृहकार्य पूरा करते हैं।

सप्ताह के अन्त में—पनम्बूर: अधिकारियों के अधिकांश बच्चे किसी न किसी पाठ्येतर गतिविधि में व्यस्त रहते हैं जैसे गाना या नृत्य। इन बच्चों को अपने माता–पिता का दोस्तों या रिश्तेदारों के घर जाना पसन्द नहीं है क्योंकि वहाँ उनके लिए कोई गतिविधि नहीं होती।

अत्तावर: कुछ अपवादों को छोड़कर इनका सप्ताहान्त पूरी तरह से स्वतंत्र होता है। अत्तावर वाले बच्चे जब अपने माता–पिता के साथ अपने रिश्तेदारों से मिलने जाते हैं तो बाहर जाकर खेलते हैं।

इन दोनों समूहों के बच्चों को बारीकी से देखने पर पता चलता है कि दोनों की जीवन शैली में बहुत अन्तर है। बच्चों के साथ हुई चर्चा से यह स्पष्ट हो गया कि अत्तावर वाले बच्चे कहीं ज्यादा खुश थे। अधिकारियों के बच्चों को लगता था कि उनके माता–पिता लगातार उनकी चौकसी करते रहते थे। मैंने इस तथ्य को समझने की कोशिश की। धीरे–धीरे मुझे उनकी स्वतंत्रता और नियंत्रण की धारणा समझ में आई। अधिकारियों के बच्चों को लगता था कि उनका पूरा जीवन उनके माता–पिता के द्वारा निर्मित और नियंत्रित किया जा रहा था। अत्तावर वाले बच्चों ने स्वतंत्रता का अनुभव किया था और उनके पास उनका अपना स्थान था।

'स्थान का न होना' या 'अपना स्वयं का स्थान'—क्या इसका बच्चे की रचनात्मकता से कुछ लेना देना है? ऐसा कैसे हो सकता है कि जो बच्चे अर्ध–झोपड़पट्टी वाले इलाके के थे और जिनकी अपनी अन्य सीमाएँ थीं; वे किसी भी स्थिति में इतनी सक्रियता से भाग लेते थे और बड़ी रचनात्मकता के साथ उनसे जुड़ जाते थे? क्या बच्चों को अपनी ही एक ऐसी दुनिया की आवश्यकता होती है जहाँ वे स्वतंत्र रूप से जो कुछ करना चाहते हैं उसे कर सकें? ऐसा क्यों है कि अधिकारियों ने अपने बच्चों को विकास करने के इतने सारे अवसर दिए लेकिन फिर भी वांछित परिणाम नहीं मिल रहे? इतने प्रेम और ध्यान से दिए गए अवसरों से बच्चे खीज क्यों उठते हैं? क्या 'माता–पिता द्वारा नियोजित' किए जाने के कारण ही बच्चों का इन अवसरों को देखने का दृष्टिकोण सीमित हो जाता है? क्या बच्चे की रचनात्मकता के लिए 'स्वयं का स्थान' इतना महत्त्वपूर्ण है?

मैंने लम्बे समय तक इन सवालों के बारे में सोचा है और इनसे मुझे बाल–केन्द्रित के मतलब को समझने की अन्तर्दृष्टि मिली है। बाल–स्नेही होना क्या होता है, इस बारे में भी दिशा निर्देश मिले हैं। अब इस बात के पर्याप्त सबूत हैं कि बच्चा तब सबसे अच्छी तरह सीखता है जब वह अपने आप सीखता है, खोज करता है, प्रयोग करता है व इन अनुभवों से अपने ज्ञान का निर्माण खुद करता है और फिर इन सबसे अधिगम होता है। लेकिन जो वयस्क बच्चे के साथ रहना चाहता है, उसके लिए यही सबसे कठिन काम है। आपको बच्चे के साथ इस प्रकार से रहना पड़ता है मानो आप वहाँ नहीं हैं। आपको बच्चे के अधिगम के लिए कुछ डिजाइन तो करना है पर बच्चे को यह नहीं लगना चाहिए कि वह 'आपका डिजाइन' है और इस मुद्दे की जड़ यह है कि आप बच्चे के साथ ढोंग नहीं कर सकते! यहाँ लाख रुपए का सवाल यह है कि क्या हम अपने बच्चों को उनका स्वयं का स्थान देना चाहते हैं? इस न्यूनतम आवश्यकता को उपलब्ध कराए बिना हम यह अपेक्षा भी कैसे कर सकते हैं कि वे रचनात्मक और मौलिक बन पाएँगे, अपने असली रूप में रह पाएँगे?

__उमाशंकर__ पेरिओडी पूर्वोत्तर कर्नाटक में अज़ीम प्रेमजी संस्थान का नेतृत्व कर रहे हैं। विकास के क्षेत्र में उन्हें पच्चीस साल का अनुभव है। उन्होंने फील्ड के कार्यकर्ताओं एवं प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों को अनुसन्धान करने के लिए मूल स्तर पर प्रशिक्षण दिया है जिसे वे नंगे पाँव अनुसन्धान कहकर बुलाते हैं। वे कर्नाटक राज्य प्रशिक्षक संस्था के संस्थापक सदस्य भी हैं। उनसे periodi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है। __अनुवाद:__ नलिनी रावल